श्रीमद् भगवदगीता – पाँचवाँ अध्याय

अनुक्रम

पाँचवें अध्याय का माहात्म्य.. 1
पाँचवाँ अध्यायः कर्मसंन्यासयोग 2

पाँचवें अध्याय का माहात्म्य

श्री भगवान कहते हैं हे देवी! अब सब लोगों द्वारा सम्मानित पाँचवें अध्याय का माहात्म्य संक्षेप में बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। मद्र देश में पुरुकुत्सपुर नामक एक नगर है। उसमें पिंगल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदपाठी ब्राह्मणों के विख्यात वंश में, जो सर्वदा निष्कलंक था, उत्पन्न हुआ था, किंतु अपने कुल के लिए उचित वेद-शास्त्रों के स्वाध्याय को छोड़कर ढोल बजाते हुए उसने नाच-गान में मन लगाया। गीत, नृत्य और बाजा बजाने की कला में परिश्रम करके पिंगल ने बड़ी प्रसिद्धी प्राप्त कर ली और उसी से उसका राज भवन में भी प्रवेश हो गया। अब वह राजा के साथ रहने लगा। स्त्रियों के सिवा और कहीं उसका मन नहीं लगता था। धीरे-धीरे अभिमान बढ़ जाने से उच्छृंखल होकर वह एकान्त में राजा से दूसरों के दोष बतलाने लगा। पिंगल की एक स्त्री थी, जिसका नाम था अरुणा। वह नीच कुल में उत्पन्न हुई थी और कामी पुरुषों के साथ विहार करने की इच्छा से सदा उन्हीं की खोज में घूमा करती थी। उसने पति को अपने मार्ग का कण्टक समझकर एक दिन आधी रात में घर के भीतर ही उसका सिर काटकर मार डाला और उसकी लाश को जमीन में गाड़ दिया। इस प्रकार प्राणों से वियुक्त होने पर वह यमलोक पहुँचा और भीषण नरकों का उपभोग करके निर्जन वन में गिद्ध हुआ।

अरुणा भी भगन्दर रोग से अपने सुन्दर शरीर को त्याग कर घोर नरक भोगने के पश्चात उसी वन में शुकी हुई। एक दिन वह दाना चुगने की इच्छा से इधर उधर फुदक रही थी, इतने में ही उस गिद्ध ने पूर्वजन्म के वैर का स्मरण करके उसे अपने तीखे नखों से फाड़ डाला। शुकी घायल होकर पानी से भरी हुई मनुष्य की खोपड़ी में गिरी। गिद्ध पुनः उसकी ओर झपटा। इतने में ही जाल फैलाने वाले बहेलियों ने उसे भी बाणों का निशाना बनाया। उसकी पूर्वजन्म की पत्नी शुकी उस खोपड़ी के जल में डूबकर प्राण त्याग चुकी थी। फिर वह क्रूर पक्षी भी उसी में गिर कर डूब गया। तब यमराज के दूत उन दोनों को यमराज के लोक में ले गये। वहाँ अपने पूर्वकृत पापकर्म को याद करके दोनों ही भयभीत हो रहे थे। तदनन्तर यमराज ने जब उनके घृणित कर्मों पर दृष्टिपात किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि मृत्यु के समय अकस्मात् खोपड़ी के जल में स्नान करने से इन

दोनों का पाप नष्ट हो चुका है। तब उन्होंने उन दोनों को मनोवांछित लोक में जाने की आज्ञा दी। यह सुनकर अपने पाप को याद करते हुए वे दोनों बड़े विस्मय में पड़े और पास जाकर धर्मराज के चरणों में प्रणाम करके पूछने लगेः "भगवन ! हम दोनों ने पूर्वजन्म में अत्यन्त घृणित पाप का संचय किया है, फिर हमें मनोवाञ्छित लोकों में भेजने का क्या कारण है? बताइये।"

यमराज ने कहाः गंगा के किनारे वट नामक एक उत्तम ब्रह्मज्ञानी रहते थे। वे एकान्तवासी, ममतारहित, शान्त, विरक्त और किसी से भी द्वेष न रखने वाले थे। प्रतिदिन गीता के पाँचवें अध्याय का जप करना उनका सदा नियम था। पाँचवें अध्याय को श्रवण कर लेने पर महापापी पुरुष भी सनातन ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसी पुण्य के प्रभाव से शुद्ध चित्त होकर उन्होंने अपने शरीर का परित्याग किया था। गीता के पाठ से जिनका शरीर निर्मल हो गया था, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उन्ही महात्मा की खोपड़ी का जल पाकर तुम दोनों पवित्र हो गये। अतः अब तुम दोनों मनोवाञ्छित लोकों को जाओ, क्योंकि गीता के पाँचवें अध्याय के माहात्म्य से तुम दोनों शुद्ध हो गये हो।

श्री भगवान कहते हैं सबके प्रति समान भाव रखने वाले धर्मराज के द्वारा इस प्रकार समझाये जाने पर दोनों बहुत प्रसन्न हुए और विमान पर बैठकर वैकुण्ठधाम को चले गये।

(अनुक्रम)

पाँचवाँ अध्यायः कर्मसंन्यासयोग

तीसरे और चौथे अध्याय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण के मुख से कर्म की अनेक प्रकार से प्रशंसा सुनकर और उसके अनुसार बरतने की प्रेरणा और आज्ञा पाकर साथ-साथ में यह भी जाना कि कर्मयोग के द्वारा भगवत्स्वरूप का तत्वज्ञान अपने-आप ही हो जाता है। चौथे अध्याय के अंत में भी भगवान ने उन्हें कर्मयोग प्राप्त करने को आज्ञा दी है, परंतु बीच-बीच में ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति। तद्विद्धि प्राणिपातेन.... आदि वचनों के द्वारा ज्ञानयोग की (कर्म संन्यास की) प्रशंसा सुनी। इससे अर्जुन इन दोनों में अपने लिए कौन-सा साधन श्रेष्ठ है उसका निश्चय न कर सका। इसलिए उसका निर्णय अब भगवान के श्रीमुख से ही हो इस उद्देश्य से अर्जुन पूछते हैं-

।। अथ पंचमोऽध्यायः ।।

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चतम्।।1।।

अर्जुन बोलेः हे कृष्ण ! आप कर्मों के संन्यास की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इसलिए इन दोनों साधनों में से जो एक मेरे लिए भली भाँति निश्चित कल्याणकारक साधन हो, उसको कहिये।(1)

श्रीभगवानुवाच
संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।2।।

श्री भगवान बोलेः कर्मसंन्यास और कर्मयोग – ये दोनों ही परम कल्याण के करने वाले हैं, परन्तु उन दोनों में भी कर्मसंन्यास से कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है।(2)

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते।।3।।

हे अर्जुन ! जो पुरुष किसी से द्वेष नहीं करता है और न किसी की आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धन से मुक्त हो जाता है।(3)

सांख्योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।4।।

उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोग को मूर्ख लोग पृथक-पृथक फल देने वाले कहते हैं न कि पण्डितजन, क्योंकि दोनों में से एक में भी सम्यक प्रकार से स्थित पुरुष दोनों के फलस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है।(4)

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं य योगं च यः पश्यति स पश्यति।।5।।

ज्ञानयोगियों द्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फलरूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।(5)

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।6।।

परन्तु हे अर्जुन ! कर्मयोग के बिना होने वाले संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूप को मनन करने वाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।(6)

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।7।।

जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तःकरण वाला तथा सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्म ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।(7)

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्।।8।।
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।।9।।

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखों को खोलता और मूँदता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थों में बरत रहीं हैं – इस प्रकार समझकर निःसंदेह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्तवा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा।।10।।

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।(10)

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्तवात्मशुद्धये।।11।।

कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं|(11)

युक्तः कर्मफलं त्यक्तवा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।।12।।

कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बँधता है|

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।।13।।

अन्तःकरण जिसके वश में है ऐसा सांख्ययोग का आचरण करने वाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारों वाले शरीर रूपी घर में सब कर्मों का मन से त्याग कर आनन्दपूर्वक सच्चिदानंदघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है|(13)

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।14।।

परमेश्वर मनुष्यों के न तो कर्तापन की, न कर्मों की और न कर्मफल के संयोग की रचना करते हैं, किन्तु स्वभाव ही बरत रहा है|(14)

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृत्तं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।15।।

सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है, किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं|(15)

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।।16।।

परन्तु जिनका वह अज्ञान परमात्मा के तत्त्वज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानंदघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है|(16)

तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः|
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः||17||

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही जिनकी निरन्तर एकीभाव से स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्ति को अर्थात् परम गति को प्राप्त होते हैं|(17)

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी|
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः||18||

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी होते हैं|(18)

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः|
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः||19||

जिनका मन समभाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही स्थित है|(19)

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्|
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः||20||

जो पुरुष प्रिय को प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रिय को प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि, संशय रहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से नित्य स्थित है|(20)

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्|
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते||21||

बाहर के विषयों में आसक्तिरहित अन्तःकरण वाला साधक आत्मा में स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है| तदनन्तर वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म परमात्मा के ध्यानरूप योग में अभिन्नभाव से स्थित पुरुष अक्षय आनन्द का अनुभव करता है|(21)

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।22।।

जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी दुःख के ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं| इसलिए हे अर्जुन ! बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता|(22)

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद् भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।23।।

जो साधक इस मनुष्य शरीर में, शरीर का नाश होने से पहले-पहले ही काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है|(23)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।24।।

जो पुरुष अन्तरात्मा में ही सुख वाला है, आत्मा में ही रमण करने वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त सांख्योगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है|(24)

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।25।।

जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चलभाव से परमात्मा में स्थित हैं, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं|(25)

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।

अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।26।।

काम क्रोध से रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिए सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं।(26)

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।।27।।
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।।28।।

बाहर के विषय भोगों को न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है।(27,28)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।29।।

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।(29)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भागवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः।।5।।
इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में 'कर्मसंन्यास योग' नामक पाँचवाँ अध्याय संपूर्ण
हुआ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ